Shree Krishna International Journal of Multidisciplinary Studies
ISSN: 2839-6146

भारतीय ग्रामीण व्यवस्था एवं सामाजिक न्याय के संदर्भ में डा० अम्बेडकर

डॉ० राजीव चौधरी, सहायक प्रोफेसर (अतिथि)

स्नातकोत्तर सेन्टर फोर राजनीत विज्ञान विभाग

जगजीवन महाविद्यालय, गया जी, मगध विश्वविद्यालय बोध गया, बिहार

शोध सार

भारतीय समाज में सामाजिकए आर्थिक एवं राजनीतिक असमानता का प्रमुख कारण शक्ति के स्रोतों का असमान वितरण तथा जाति आधारित सामाजिक व्यवस्था रही है। भारतीय ग्रामीण व्यवस्था में यह असमानता विशेष रूप से दलितोंए महिलाओं एवं अन्य वंचित वर्गों के संदर्भ में स्पष्ट दिखाई देती है। डॉण् भीमराव अम्बेडकर का चिंतन इसी असमानतापूर्ण व्यवस्था को समाप्त कर एक न्यायपूर्ण एवं समतामूलक समाज की स्थापना पर केंद्रित था। उन्होंने ग्रामीण समाज में व्याप्त जातिगत भेदभावए सामाजिक पूर्वाग्रहए अस्पृश्यता एवं आर्थिक शोषण को सामाजिक न्याय की स्थापना में प्रमुख बाधा माना। उनके अनुसार केवल राजनीतिक लोकतंत्र की स्थापना पर्याप्त नहीं हैए बल्कि उसे सामाजिक एवं आर्थिक लोकतंत्र में परिवर्तित करना भी आवश्यक है। डॉण् अम्बेडकर ने स्वतंत्रताए समानता एवं बंधुत्व को सामाजिक लोकतंत्र के मूल आधार के रूप में स्वीकार किया तथा शिक्षाए संगठन और संघर्ष को सामाजिक परिवर्तन के महत्वपूर्ण माध्यम माना। उन्होंने दलितोंए अल्पसंख्यकोंए श्रमिकों एवं महिलाओं के अधिकारोंए सम्मान और सत्ता में उचित भागीदारी पर विशेष बल दिया। महिलाओं की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति में सुधार के लिए उन्होंने शिक्षाए संपत्ति के अधिकार तथा हिन्दू कोड बिल का समर्थन किया। प्रस्तुत शोध.आलेख में भारतीय ग्रामीण व्यवस्था के संदर्भ में डॉण् अम्बेडकर के सामाजिक न्याय संबंधी विचारोंए लोकतंत्र की अवधारणाए जाति व्यवस्था के विरोधए लैंगिक समानता तथा वंचित वर्गों के सशक्तिकरण में राज्य की भूमिका का विश्लेषण किया गया है। अंततः यह स्पष्ट होता है कि डॉण् अम्बेडकर का अंतिम लक्ष्य केवल राजनीतिक स्वतंत्रता नहींए बल्कि सामाजिक एवं आर्थिक जीवन में भी समानता और व्यक्ति की गरिमा पर आधारित वास्तविक लोकतांत्रिक व्यवस्था की स्थापना करना था।

मुख्य शब्द: डॉ. भीमराव अम्बेडकर, भारतीय ग्रामीण व्यवस्था, सामाजिक न्याय, सामाजिक लोकतंत्र, जाति व्यवस्था, समानता, महिला सशक्तिकरण, दलित अधिकार, स्वतंत्रता एवं बंधुत्व।



डॉ० राजीव चौधरी
rajeevchoudhary2014@gmail.com

Paper Received: 29/05/2026

Paper Revised: _____

Paper Accepted: 08/06/2026

प्रस्तावना

भारत में शक्ति के स्रोतों पर शोषक को का कब्जा है। जबकि विश्व स्तर पर परिस्थितियों में उल्लेखनीय बदलाव आया है वह चाहे अमेरिकी अस्वेत हो या आस्ट्रेलिया या फिर दक्षिण अफ्रीका का मुलनिवासीए संसाधनो पर सभी की हिस्सेदारी नही है। लेकिन भारत में यह बदलाव क्यों हो पा रहा है।

क्रेडिट सुईस की छठी रिपोर्ट बताती है कि सामाजिक आर्थिक समानता के लिए सरकारों द्वारा किये जा रहे प्रयासो में भारी विरोधाभास है। रिपोर्ट बतलाती है कि 2000 से 2015 के बीच देश में अर्जित कुलधन का 81 प्रतिशत हिस्सा केवल 10 प्रतिशत लोगो के पास है। जबकि शेष 90 प्रतिशत बची जनसंख्या का आधे हिस्से के पास केवल 41 प्रतिशत ही धनपूंजी उपलब्ध हैं। स्पष्ट है कि धनपूँजी उपलब्ध है लाख प्रयासो के बाबजुद भारत सामाजिक आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय को अपने सभी नागरिको के लिए प्रापत करने में असफल रहा है।

दुनिया भर के रिपोर्ट बतलाते है कि सामाजिकए आर्थिक असमानता का जन्म शक्ति के स्रोतो का असमान वितरण से होता है जो कि भारत के संदर्भ में सही है। भारत के ग्रामीण व्यवस्था में विभिन्न समाज वर्गो की सामाजिक जटिलता एवं शक्ति के स्रोतों के संदर्भ में खासकर दलितो एवं महिलाओ के लिए एकमद सटीक बैठता है।

डा० अम्बेडकर का गाँधी के ग्रामीण स्वराज के दर्शन का विरोध में कहना था किए गाँव तो जाति की जटिलता से ग्रस्त है। प्राचीन पूर्वाग्रह से बंधी हुइ हैए पद-प्रतिष्ठा; स्टेटसद्ध की समानता के प्रति उदासीन हैए और जीवन में श्रेणी बाध से नियंत्रित है. कुछ लोग ऊंचे हैं और कुछ निम्न। क्या इनसे सही भाव-विचार की आशा की जा सकती है कि ये मामूली न्याय को भी अंजाम दे सकेंगे। डॉ० अम्बेडकर वंचितो के अधिकारए मर्यादा के प्रति पूर्णतया सजगए जागरूक थे और इस संबंध में ऐसा कोई विचार इन्हें स्वीकार्य नहीं था जो इनके हित में न हो। असमानता को दूर करना इनके चिंतन का केंद्र बिंदु था।

डा० अम्बेडकर के अुनसार व्यवस्था परिवर्तन त्रिस्तरीय है और इन तीनो स्तरों पर सतत क्रियाशीलता ही परिवर्तन की गति को तय करती है। प्रथम सतर बौद्धिक क्षेत्र का हैं। शास्त्रों की स्वार्थहित व्याख्याए मनुष्य और मनुष्य के मध्य विभेद का कारण रही हैए इस लिए उनकी अवैज्ञानिकता को तर्क और प्रमाणों के आधार पर ही सिद्ध किया जा सकता है। और यह कार्य बिना अध्ययन और परिश्रम के संभव नहीं है। बौद्धिकता के बल पर ही नकारात्मकता के विरूद्ध लड़ा जा सकता है। दुसरे स्तर पर उपेक्षित वर्गो के हितार्थ लड़ने के लिए एक मंच या संगठन की आवश्यकता हैं ऐसे संगठन के अभाव में परिवर्तन की प्रक्रिया धीमी पड़ जाती है। तीसरे स्तर की लड़ाई के लिए मैदान में उतरना पड़ता है। संगठित शक्ति का दबाव व्यवस्था पर प्रहार करता है जिससे परिवर्तन अवश्यंभावी है। डॉ० अम्वेडकर पत्रकारिता के महत्व को स्वीकारते हुए इसे सामाजिक परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण शस्त्र मानते थे।

बाबा साहब मानसिक पराधीनता को राजनीतिक गुलामी से भी अधिक घातक मानते थे। उनके विचार से पिछड़े समाज की समस्या सिर्फ रोटीए कपड़ा और मकान की नही है। उसकी समस्या सामाजिक परिस्थितियों के कारण मन में बैठ गई हीन भावना भी है। इस हीन भावना की वजह से उसका विकास अवरुद्धद्ध हो गया है। उच्च शिक्षा का प्रसार किए बिना उसे इस हीन भावना से उवारा नही जा सकता बाबा साहब का अटूट विश्वास था कि शिक्षा ही मनुष्य और समाज के जीवन में बदलाव ला सकती है। वह

लड़कों और लड़कियों की शिक्षा पर बराबर जोर देते थे। उनके अनुसार आत्मसम्मान की अनुभूति शिक्षा से ही जागती है। इसलिए लड़कों के साथ.साथ लड़कियों को भी शिक्षित किया जाना चाहिए।

डॉ० अम्बेडकर का विचार था कि प्रजातंत्र का सर्वप्रथम दायित्व जनता के सर्व हितों की सुरक्षा हैए वे कहते थेए हमें अपने राजनीतिक प्रजातंत्र को एक सामाजिक प्रजातंत्र भी बनाना चाहिए। सामाप्रजातंत्र समानता और बंधुत्व को जीवन के सिद्धांतों के रूप में देखता है। स्वतंत्रताए, समानता और बंधुता की त्रयी को अलग.अलग इकाइयों के रूप में नही लिया जाना चाहिए। भारत के राजनीतिक चिंतन में न्याय का आदर्श भेदभावकारी होना शामिल था। उदाहरण के लिए जाति व्यवस्था के अन्तर्गत ऊंच.नीच की व्यवस्था। भारत के संविधान की प्रस्तावना का प्रारूप डॉ० अम्बेडकर ने तैयार किया था। प्रस्तावना सभी नागरिकों के लिए सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक न्याय दिलाने का वादा करती है। सबके लिए सामाजिकए, आर्थिक और राजनीतिक न्याय आंबेडकर के न्याय के विचार के मुख्य आधार है।

एक न्यायपूर्ण समाज की जरूरतों को पुरा करने के लिए कानून तैयार किया जाता है। कानून न्याय पूर्ण समाज बनाने के लिए एक प्रक्रिया के रूप में काम करता है। कानून को ठीक तरीके से लागू करने या उसे व्यवहार में उतारना न्यायपूर्ण समाज बनाने की अनिवार्य जरूरत है हालांकि कानून न्याय का केवल एक पक्ष है। न्याय के अवयव अधिकार और जरूरते हैं रार्वटनोजिक जैसे प्राकृतिक अध्किारों के समर्थक राज्य की कम से कम भूमिका की बाते करते हैं। उपयोगितावाद में अधिकतम लोगों की अधिकतम खुशी को न्याय का पैमाना माना जाता है। न्याय के सिद्धांतों के विकास में सबसे बड़ा परिवर्तन जॉनरॉल्स का न्या का सिद्धान्त आने के साथ आया। उनकी सिद्धांत इस बात पर जोर देता है कि मुख्य बात यह है कि कैसे न्याय समाज मे मौजुद असमानता की स्थिति का मुकाबला करता है। रावल्स का न्याय का विचार सभी व्यक्तियों का समान तरिके से ध्यान रखने की बात करता है। यहां तक कि प्लेटों भी असमानता पर विचार करते हैए जब वे कहते है कि ष्लोकतंत्र समान लोगो और असमान लोगों के बीच एक अलग तरह की समानता ;यहाँ सकारात्मक भेदभावद्ध बांटता है। निष्पक्षता के रूप में न्याय का विचार रावल्स के लिए राजनीतिक और नैतिक धारणा दोनों है। इस बात को उन्होने आधुनिक संवैधानिक लोकतंत्र को ध्यान में रखकर प्रस्तुत किया ;रावल्स 1997द्ध। डॉ० आंबेडकर का न्याय का विचार इस मामले मे रावल्स से मेल खाता है कि वे भी समाज के भीतर असमानता को ध्यान में रखकर एक न्यायपूर्ण और निष्पक्ष समाज की स्थापना करना चाहते थे। उनके इस विचार ने रावल्स की निष्पक्षता के रूप में नया की अवधारणा को स्वीकार किया।

यदि हम लोकतत्र को केवल रूप में ही नहीं वरन् यथार्थ में बनाए रखना चाहते हैं तो हमें क्या करना चाहिएघ् मेरे विचारानुसार सबसे पहले हमें यह करना चाहिए कि अपने सामाजिक और आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए हम संविधानिक रीतियों को दृढ़ता.पूर्वक अपनाएः इसका अर्थ यह है कि क्रांति का निर्मम रीतियों का हम परित्याग करें इसका अर्थ यह है कि सविनय अवज्ञाए असहयोग और सत्याग्रह की रीति का हम परित्याग करें। आर्थिक तथा सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए जब कोई मार्ग न रहे तब तो इन असंवैधानिक रीतियों का अपनाना बहुत कुछ रूप में न्यायपूर्ण हो सकता है। पर जब संवैधानिक रीतियों का मार्ग खुला हुआ है तो इन असंवैधानिक रीतियों का अपनाना कभी न्यायसंगत नही हो सकता है। ये रीतियों अराजकता के सूत्रपात के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं और जितना शीघ्र इनका परित्याग किया जाए उतना ही हमारे लिए अच्छा है।

दूसरी बात जो हमें करनी है वह यह है कि हम उस सावधानी को बर्ते जो जोन स्टूआर्ट मिल ने उन सबको बरतने के लिए कही है जो लोकतंत्र को बनाए रखने में रूचि रखते हैंए वह यह है कि उस किसी भी महान व्यक्ति के चरणों में अपने स्वातंत्र्य को चढ़ा न दें या उसे वे शक्तियां न सौपें जो उसे उन्ही की संस्थाओं को

मिटाने की शक्ति दे। महान व्यक्तियों के प्रतिए जिन्होंने जीवन पर्यन्त देश की सेवा की होए कृतज्ञ होने में कोई बुराई नहीं है। पर कृतज्ञता की भी सीमा है। आयरलेंड के देशभक्त डोनियल ओं कोनैल ने उस विषय में यह ठीक ही कहा है अपने सम्मान को खोकर कोई पुरूष कृतज्ञ नहीं हो सकताए अपने अस्तीत्व को खोकर कोई स्त्री कृतज्ञ नही हो सकतीए और अपने स्वातंन्य को खोकर कोई राष्ट्र कृतज्ञ नहीं हो सकता। किसी अन्य देश की अपेक्षा भारत के लिए यह चेतावनी अधिक आवश्यक है। क्योंकि भारत में भक्ति या जिसे भक्ति मार्ग या वीर पूजा कहा जाता है उसका भारत की राजनीति में इतना महत्वपूर्ण स्थान है जितना किसी अन्य देश की राजनीति में नही है। धर्म में भक्ति आत्म.मोक्ष का मार्ग हो सकता है। पर राजनीतिक में भक्ति या वीर पूजा पतन तथा अन्ततः तानाशाही का एक निश्चित मार्ग है।

तीसरा काम जो हमें करना है वह यह है कि केवल राजनीतिक लोकतंत्र से ही हमें संतुष्ट नहीं हो जाना चाहिए। अपने राजनीतिक लोकतंत्र को हमें सामाजिक लोकतंत्र का रूप भी देना चाहिए। सामाजिक लोकतंत्र का क्या अर्थ हैघ् इसका अर्थ जीवन के उस मार्ग से हैं जो स्वतंत्रताए समता और बंधुत्व को जीवन के सिद्वांतों के रूप में अभिज्ञात करतास्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के इन सिद्वांतों को इन तीनों के एक संयुक्त रूप से पृथक.पृथक मदों के रूप में नहीं समझना चाहिए। इन तीनों का मिलकर एक इस प्रकार का संयुक्त रूप बनता है कि एक का दूसरे से विच्छेद करना लोकतंत्र के मूल प्रयोजन को ही विफल करना है। स्वातंन्य को समता से पृथक नहीं किया जा सकता और न स्वातंन्य या समता को ही बंधुत्व से पृथक किया जा सकता है। समता विहीन स्वातंन्य से कुछ व्यक्तियां की अनेक व्यक्तियों पर प्रभुता का प्रादुर्भाव होगा। स्वातंन्य विहीन समता व्यक्तिगत उपक्रम का ह्रास करेगा। बंधुत्व के बिना स्वातंन्य और समता अपना स्वाभाविक मार्ग ग्रहण नहीं कर सकते। उनको प्रवृत करने के लिए सिपाही की आवश्यकता है। यह तथ्य स्वीकार करते हुए हमें कार्यारंभ करना चाहिए कि भारतीय समाज में दो बातों का पूर्णतया अभाव है। इनमें से एक समता है। सामाजिक स्तर पर हमारे भारत में हमारी एक ऐसी समाज है जो क्रमानुसार निश्चित असमानता के सिद्वांत पर आश्रित है जिसका अर्थ कुछ व्यक्तियों की उन्नति और कुछ का पतन है। आर्थिक स्तर पर हमारा एक ऐसा समाज है जिसमें कुछ लोग ऐसे हैं जिनके पास अतुल सम्पति है और कुछ ऐसे हैं जो निरी निर्धनता में जीवन बिता रहे हैं। 26 जनवरी 1950 को हम विरोधी भावनाओं से परिपूर्ण जीवन में प्रवेश कर रहे हैं। राजनीतिक जीवन में हम समता का व्यवहार करेंगे और सामाजिक तथा आर्थिक जीवन में असमानता का। राजनीति में हम एक व्यक्ति के लिए एक मत और एक मत का एक ही मूल्य के सिद्वांत को मानेंगे। अपने सामाजिक और आर्थिक जीवन में अपनी समाजिक और आर्थिक व्यवस्था के कारण एक व्यक्ति का एक ही मूल्य के सिद्वांत का हम खंडन करते रहेंगे। इन विरोधी भावनाओं से परिपूर्ण जीवन को हम कब तक बिताते चले जाएंगेघ् यदि हम इसका बहुत काल तक खंडन करते रहेंगे तो हम अपने राजनीतिक लोकतंन्य को संकट मे डाल देंगे। हमें इस विरोध को यथासंभव शीघ्र ही मिटा देना चाहिए। अन्यथा जो असमानता से पीड़ित हैं वे लोग इस राजनीतिक लोकतंत्र की उस रचना का विध्वंस कर देंगे जिसका निर्माण इस सभा ने इतने परिश्रम के साथ किया है।

व्लेरियन रोड्रिग्स का एक निबंध आंवेडकर एज ए पोलिटिकल फिलासफर्स हैए जिसमें वे अम्बेडकर को एक रानीतिक दार्शनिक के रूप में प्रस्तुत करते है। रोड्रिंग्स उन मुद्दो को उजागर करते हैं जिनके लिए जीवन भर डॉ० आंवेडकर संघर्ष करते रहे। इन मुद्दो में न्यायए स्वतंत्रताए समानताए समुदायए लोकतंत्रए सत्ता और वैधता है ;रोड्रिंग्स 2017द्ध आंवेडकर के सामाजिक न्याय का विचार अपने ये राजनीतिक और आर्थिक न्याय को भी शामिल किए हुए है। आंबेडकर सबसे बंचित लोगों के सामाजिक उत्थान को प्राथमिकता देना चाहते थे। दलितोए अलपसंख्यकोए महिलाओं और श्रमिकों को आंबेडकर सबसे बंचित तबको में शामिल करना चाहते थेए उनका मानना था कि जाति व्यवस्थाए साम्प्रदायिकताए पितृसत्ता और श्रमिकों का औद्योगिक शोषणए असमानता पैदा करते हैं और सामाजिक न्याय के मार्ग में बाधा पैदा करतें

है। असमानता के इन स्रोतो के रूढ़ हो जाने और निरंतर बने रहने के चलते डॉ० आंबेडकर सुझाव देते है कि असामनता के शिकार लोगों को सशक्त बनाने के लिए राज्य को सक्रिय भूमिका निभानी चाहिए। न्याय की आधारशिलाए स्वतंत्रताए समानता और बंधुता है।

भेदभाव आधारित धर्म एवं जाति न्याय में बाधक.

आंबेडकर धर्म क खिलाफ नही थे। उन्होने धर्म का पक्ष लेते हुए एडमंउ बर्क को उद्धृत किया है। एडमंड बर्क कहत हंर कि एक सच्चा धर्म समाज का आधार होता है। इस पर सभी सच्ची सभ्यताएं टिकी होती है। लेकिन हिन्दु धर्म को आंबेडकर एक धर्म नही मानते थे। क्योंकि यह जाति व्यवस्था पर आधारित हैं और जाति व्यवस्था न्याय के तीनो तत्वों स्वतंत्रताए समानता और बंधुत्व का निषेध करती है। आंबेडकर मानते थे कि हिन्दु धर्म बस आदेशों और निषेधों; नियमों न कि सिद्वांतोंद्ध की संहिता हैए जिसे उसने अपने अनुयायियों के लिए जारी किया है। हिन्दू समाज का आधार इसका भेदभाव ही है। यह अन्य धर्मो को सहन कर सकता हैए जब वह किसी अन्य जाति से संबंधित हिन्दू को ही सहन नही कर पाताघ् हिन्दू समुदाय केवल उसी समय एकजुट होता दिखता हैए जब दो अन्य महत्वपूर्ण धार्मिक समुदायों में से किसी एक के खिलाफ दंगा भड़क उठता है। अल्पसंख्यकों के अधिकारो के प्रति आबेडकर का गहरा सरोकार था। अल्पसंख्यक किन समस्याओं का सामना करतें हैं। इस संदर्भ में अपनी राय उन्होने साइमन कमीशन और तीसरे गोलमेज सम्मेलन में प्रस्तुत अपने ज्ञापन में प्रकट किया है। बहुसंख्यक सम्प्रदाय बहुल इलाकें में अल्पसंख्यकों को किन समस्याओं का सामना करना पड़ता हैए वह इससे परिचित थे। इसी कारण से उन्होंने व्यस्थापिकाए कार्यपालिका और नौकरशाही में अल्पसंख्यकों के उचित प्रतिनिधत्व की मांग की थी। डा० अम्बेडकर कहते हैए जातियाँ जो निम्न मानी जाती हैए उन्हें सत्ता में कभी भागीदारी नहीं दी जाती है। स्वस्थ प्रजातांत्रिक व्यवस्थाओं के विकास में जातियाँ बाधाएँ खड़ा करती है। मतलब यह कि जबतक हम सामाजिक स्तर पर लोकतंत्र को स्थापित नही कर लेते है तब तक राजनीतिक लोकतंत्र जीवित नहीं रह सकती है। सामाजिक लोकतंत्र से क्या आशय हैघ् इस पर डा० अम्बेडकर कहते है कि सामाजिक जीवन जीने का एक ऐसा रास्ता जिसमें स्वतंत्रताए समानता एवं व्यक्ति की गरिमा के सिद्वांत का पालन किया जाता है।

आधी आबादी को मिले समानता का अधिकार.

जाति व्यवस्था पर चोट करते हुए डॉ० आंबेडकर ने कभी इस बात को अपनी आँखों से ओझल नही होने दिया कि हिन्दु समाज व्यवस्था के भीतर महिलाओं के अधिकारों से इंकार किया गया है। वे सती प्रथा और बाल विवाह की भर्तसना करते थे और हिन्दु परिवार व्यवस्था के पुनर्गठन की अपनी दृष्टि के अनुसार विधवाओं के पुनर्विवाह के पक्ष में तर्क देते थे। हिन्दु कोड बिल में आंबेडकर ने संपति का अधिकार पुरूष और स्त्री दोनो उत्तराधिकारियों को देने का प्रावधान कियाए 18 जुलाई 1927 को उत्पीड़ित वर्ग की लगभग 3 हजार महिलाओं की एक सभा को संबोधित करते हुए आंबेडकर ने कहा कि किसी समुदाय की प्रगति को उस वर्ग की महिलाओं की प्रगति से मापा जा सकता है; रामाह 2017द्ध उन्होने लड़कियों की शिक्षा माहवारी के संदर्भ में महिलाओं की गरिमा की तलाव भत्ता इत्यादिए का समर्थन किया। आंबेडकर पितृबत्मक समाज में महिलाओं के साथ होने वाले भेदभाव को गहराई से महसूस करते थे और उन्होने लैंगिक अन्याय के लिए आहार किया।

निष्कर्ष.

इस प्रकार हम देखते है कि उनके जीवन का अंतिम लक्ष्य था वास्तविक सामाजिक लोकतंत्र की स्थापना करना। वह भारत में व्यक्ति के राजनीतिक जीवन के साथ-साथ सामाजिक एवं आर्थिक जीवन में भी एक वोटए एक मूल्य के सिद्वांत की स्थापना करना चाहते थे।

संदर्भ .ग्रंथ सूची

1. फॉरवर्ड प्रेस, अगस्त 2018, वर्ष 24, पृष्ठ 1–4।

2. कुरुक्षेत्र, दिसंबर 2015, अंक 02, वर्ष 62, पृष्ठ 15–25।

3. आनन्द आथिरा, फॉरवर्ड प्रेस, अगस्त 2017, पृष्ठ 1–5।

4. *Review of Politics*, अंक 24 (1–2), 2016, पृष्ठ 62–71।

5. *The Indian Economic Journal*, Centenary Year Special Issue, Volume 2।

6. Ahmad, A. (2011). "Ambedkar on Law, Constitution and Social Justice". Central Press, New Delhi.

7. सिंह, श्याम (2010). *संविधान सभा में डॉ. अम्बेडकर*। सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 195–196।

8. Credit Lewis (2016). *6th Report*. Website.

SKIJMS.COM